लीला

(गीति नाट्य)

श्रीमैथिलीशरण गुप्त

साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)

प्रथमावृत्ति
२०१७ वि०

मूल्य
रुपया २.००

श्री सुमित्रानन्दन गुप्त द्वारा
साहित्य-मुद्रण, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित
तथा साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) द्वारा प्रकाशित ।

श्रीराम

निवेदन

बहुत दिन हुए, मैंने भास के कुछ नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया था। उनमें से 'स्वप्नवासवदत्ता' १९८६ विक्रमाब्द में छप भी गया था। तत्पश्चात् 'अभिषेक' और 'प्रतिमा' की मुद्रण-प्रतियाँ प्रस्तुत की गई थीं, परन्तु वे ऐसी स्थानान्तरित हुई कि इधर खोजने से भी नहीं मिल रही हैं। उन्हें खोजने में कुछ अन्य रचनाएँ अवश्य मिल गई हैं। 'लीला' भी उनमें से एक है। यह बयालीस-तेतालीस वर्ष पहले लिखी गई थी।

'साकेत' की रचना रामायण के अयोध्या काण्ड से आरम्भ की गई थी। 'लीला' की रचना सम्भवतः बालकाण्ड की कथा-पूर्ति के उद्देश्य से की गई थी। उसके दो तीन अंश सन् १९१९ में 'सरस्वती' में छपे भी थे। फिर वह पड़ी रह गई। स्वर्गीय मुंशी अजमेरी ने उसकी मुद्रण-प्रति प्रस्तुत की थी। वह जिस रूप में मिली, उसमें अब कुछ फेर-फार करने को मन नहीं चाहा। वह जैसी थी वैसी ही प्रकाशित की जा रही है।

सन्तोष यही है कि मनुष्यत्व के प्रति मेरी तब जो आस्था थी, वह अब भी है।

चिरगाँव
कार्तिकी पूर्णिमा, २०१७

मैथिलीशरण

किया धन्य लीलामय ने है
नर - लीला - विस्तार ;
दिखलाकर निज जनवत्सलता ,
लिया आप अवतार ।

पात्र

पुरुष

दशरथ—अयोध्या के महाराज

रामचन्द्र लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न	दशरथ के पुत्र

धीर वीर गम्भीर	चारों कुमारों के सखा

विश्वामित्र—ब्रह्मर्षि

जनक—मिथिला के महराज

परशुराम—मुनि

अराल कराल	दो राक्षस

दो राजा और द्वारपाल इत्यादि

स्त्रियाँ

पृथ्वीदेवी—पृथ्वी की अधिष्ठातृ देवी

कौशल्या	)	महाराज दशरथ की रानियाँ तथा
सुमित्रा	)	राम और लक्ष्मण की माताएँ
सीता	)	जनक की पुत्रियाँ
ऊर्मिला	)	
सुगन्धिका	)	सीता और ऊर्मिला की सखियाँ
सुलक्षणा	)	

ताड़का—एक राक्षसी

सखियाँ इत्यादि

श्रीगणेशाय नमः

लीला

१

पृथ्वी देवी

[फणीन्द्रफणाश्रित रत्न-सिंहासन पर आसीन]

गीत

दूर अब होगा मेरा भार,
करुणावरुणालय विभुवर ने सुन ली अहा! पुकार।
किया धन्य लीलामय ने है नर-लीला-विस्तार,
दिखलाकर निज जन-वत्सलता लिया आप अवतार।

शीतल हुआ हृदय यह मेरा वे पद-पङ्कज धार ,
जिनकी रज सिर पर रखते हैं अज भी वारंवार ।
आदि शक्ति के सहित हुए हैं निराकार साकार ,
बची रसातल जाने से मैं पाकर यों उद्धार ।
नीच निशाचर-कुल का होगा अब सत्वर संहार ,
पूर्णादर्श चरित की शिक्षा पावेगा संसार ।
मेरा भारत भाग भाग्य-सा चमका सभी प्रकार ,
जिसका अतिथि हुआ है आकर सहसा स्वर्गागार ।
ऊँचा हुआ हिमालय का सिर गूँजा जय जयकार ,
जय जय मर्यादापुरुषोत्तम, जय जय जगदाधार !

२

स्थान—एक प्रान्तर

[राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, धीर और गम्भीर]

लक्ष्मण

आर्य, आज मृगयार्थ चलोगे ?

राम

मृगया तुमको भाती है ?

लक्ष्मण

अंगस्फूर्ति, लक्ष्य-लघुता भी
उसके कैसी आती है !
मेरी इच्छा है कि सिंह से
आज नियुद्ध मचाऊँ मैं,
दोनों पिछले पंजों के बल
उसको नाच नचाऊँ मैं।

शत्रुघ्न

सिंह नहीं, तब रीछ ठीक है,

भरत

ये साहस की बातें हैं;
पिता सुनेंगे क्रोध करेंगे,
पशुओं में भी घातें हैं।

धीर

और इसलिए वन में जाना
केवल कष्ट उठाना है,
सिंह समझकर मुझे नचा लो,
जैसा मन में ठाना है।
बाल बिखेर रीछ बन जाऊँ,
चीते की छलाँग मारूँ;
कहो, सुअर-सा सीधा भागूँ,
जल-थल में न कहीं हारूँ!
पशुओं को भी पशुओं की सब
विद्याएँ मैं सिखलाऊँ,
हिरनचौकड़ी भरूँ कहो तो,
गीदड़भभकी दिखलाऊँ!

बन्दरघुड़की यहीं दिखा दूँ,
वन में व्यर्थ भटकना है,
काँटों की झाड़ी में जाकर
अपने - आप अटकना है!

राम

बड़ी कलाएँ हैं तुझमें तो!

धीर

मैं क्या ऐसा वैसा हूँ?
मेरी ऐसी - तैसी — ऊँ हूँ—
जैसा हूँ मैं, कैसा हूँ?

गम्भीर

प्राण बचे,

भरत

क्या हुआ?

गम्भीर

बता दूँ?
बचा धूप में मरने से,

भरत

किन्तु बचोगे कैसे बच्चू !
सरयू - जल में तरने से ?

धीर

अरे बाप रे ! जल-विहार की
यह भी कोई बेला है !

लक्ष्मण

बेला हो कि न हो, मगरों का
झगड़ा और झमेला है !

भरत

लक्ष्मण, भैया, यह कटाक्ष क्यों ?
मैं मृगया से भीत नहीं ;
सत्य बात यह है कि व्यर्थ ही
रक्तपात से प्रीत नहीं ।

लक्ष्मण

सचमुच तुममें दया बहुत है,
जल-विहार ही होने दो ;
बेला भी चढ़ती है, इसको
उसका रोना रोने दो ।

धीर

मैं क्या रोऊँगा, हँस हँसकर
सबको दाँत दिखाऊँगा ;
उपवन में चलिए तो आहा !
मधुर-मधुर फल खाऊँगा !

शत्रुघ्न

हमको भी खिलायगा ?

धीर

हाँ हाँ,
चलिए, हवा खिलाऊँगा ;
पकड़ पकड़कर ललित लताएँ
उनको खूब हिलाऊँगा ।

भरत

आर्य्य, आपकी क्या आज्ञा है ?

राम

जिसमें तुम सब सुख पाओ ,
खेलो कोई खेल प्रेम से
किन्तु इसे न भूल जाओ—

मृगया क्षत्रिय-कुल का गुण है,
किन्तु अधिकता भली नहीं;
दया खलों पर दुर्बलता है,
किन्तु वधिकता भली नहीं।

भरत और लक्ष्मण

जो आज्ञा,

गम्भीर

पर प्रथम तर्क से
आओ, सिद्ध करें इसको,

लक्ष्मण

रहो, तर्क का काम नहीं है,
छोड़ो दन्त घिसाघिस को।

गम्भीर

तर्क-शास्त्र से यह विरक्ति क्यों?

धीर

शस्त्रों के प्रेमी ठहरे!

गम्भीर

पर मृगया तो आज न होगी,
अर्थ हो चुके हैं गहरे!

राम

हुआ, चलो अब सरयू-तट पर
चलें
(देखकर),
अरे, यह वीर कहाँ ?

(वीर का प्रवेश)

वीर

आर्य, एक कौशिक-कौशिक कर
आये हैं मुनि धीर यहाँ !

राम

विश्वामित्र पधारे हैं क्या ?

वीर

हाँ हाँ, यही नाम उनका ;

गम्भीर

वाह ! नाम का क्या कहना है ,
होगा क्या न काम उनका !

शत्रुघ्न

दादा, विश्वामित्र कौन हैं ?

राम

बड़े तपस्वी, ज्ञानी हैं,
क्षत्रिय से ब्रह्मर्षि हुए हैं
इससे अब भी मानी हैं।
शकुन्तला थी सुता इन्हींकी
श्रीदुष्यन्त भूप - जाया,
जिसके पुत्र भरत थे जिनसे
भारत भारत कहलाया।
अपने पूर्वज हरिश्चन्द्र थे—
स्वर्ग मिला सशरीर जिन्हें,
राज्य-दान कर बिके आप वे
करने को सन्तुष्ट इन्हें।

शत्रुघ्न

ठीक, ठीक, अब याद आगई,

गम्भीर

फिर क्यों इनके चरण पड़े ?

दाता को बिकवाकर छोड़ा,
आये विश्वामित्र बड़े !

राम

यह कहना अनुचित है देखो,
वह तो एक परीक्षा थी;
मिली सफलता जिसमें हमको
जैसी कुल की दीक्षा थी।
यदि अब फिर कुछ कृपा करें वे
तो सौभाग्य हमारा है,
फिर सब देखें, सूर्य्य-वंश में
उसी रुधिर की धारा है।

भरत

तो फिर चलो, सभा में चलकर
उनके दर्शन कर आवें,

वीर

अच्छा हुआ, चलें तो हम भी
नौ-दो-ग्यारह हो जावें।
वन में फिरने, जल में गिरने,
दोनों से छुट्टी पाई,

लक्ष्मण

क्या कहना है, बड़ा भाग्य था !

राम

अच्छा, चलो, चलें भाई !

३

स्थान—अयोध्या का राजभवन

[दशरथ और विश्वामित्र]

दशरथ

बड़ी कृपा की आज आप जो मुनिवर, आये ;
घर बैठे ही अहा ! दास ने दर्शन पाये।
अभिलाषा है यही कि कुछ सेवा भी लीजे ,
जो यह गौरव दिया वृद्धि यों उसकी कीजे।
कुशल - रूप हैं आप, कुशल तो है आश्रम में !
बाधा तो कुछ नहीं यज्ञ या तप के क्रम में ?
फल - फूलों के सहित वृक्ष तो हरे - भरे हैं ?
पशु - पक्षी तो किसी विघ्न से नहीं डरे हैं ?
हो यदि कोई ईति - भीति तो उसे हरूँ मैं ,
जो आज्ञा हो वही सुतों के सहित करूँ मैं।

(रामादिक चारों भाइयों का प्रवेश)

(देखकर)

ये सुत भी आगये, वत्स ! आओ, सुख पाओ ;
मुनि को करो प्रणाम, पूर्ण निज भक्ति दिखाओ ।

(चारों भाईयों का प्रणाम करना)

विश्वामित्र

मान्धाता-सम-सदा दिवसमय राज्य करो तुम ,
भूप भगीरथ-सदृश कीर्ति-भाण्डार भरो तुम ।
रघु-सम अपने विमल वंश की वृद्धि करो तुम ,
हो दशरथ-सम रथी, सुरों का सोच हरो तुम ।

राम

अनुगृहीत हम हुए,

दशरथ

वत्स ! मुनि-नाम सुना है ?

राम

तात, सुना है और अलौकिक काम सुना है ।
दर्शन भी कर लिये आज इन तपोनिष्ठ के ,
होते हैं ये विदित बन्धु-से गुरु वसिष्ठ के ।

विश्वामित्र

सचमुच मेरे परम बन्धु हैं वे व्रतधारी,
वत्स ! सरलता और बुद्धि है धन्य तुम्हारी।

(दशरथ से)

धन्य भूप, तुम धन्य कि ऐसे सुत हैं जिनके,
होंगे अनुकरणीय चरित लोकों में इनके।
सुनिए, अब जिस लिए यहाँ आया हूँ वन से,
खल राक्षस हैं प्राप्त वहाँ विघ्नों के घन-से !
करते हैं उत्पात महा हठकर हत्यारे,
धर्म्म-कर्म्म सब कठिन हुए हैं उनके मारे।

राम

(स्वगत)

ऐं, राक्षस क्या भरतखण्ड में भी घुस आये,
सिन्धु पार कर यहाँ विघ्न-घन बनकर छाये !
करनी है क्या धूल उन्हें सोने की लङ्का,
रखते हैं जो नहीं चित्त में वे कुछ शङ्का ?

(लक्ष्मण से)

लो, लक्ष्मण ! आगई उचित मृगया की वेला,
खेलो अब यदि नहीं अभी खड्गों से खेला !

पुण्य भूमि पर पाप कभी हम सह न सकेंगे।
पीड़क पापी यहाँ और अब रह न सकेंगे।

लक्ष्मण

आर्य, बड़ा उपयुक्त समय है, करो न देरी;
छाती दूनी हुई हर्ष से सुनकर मेरी।
जाने दें या नहीं पिता, बस सोच यही है,
समझ न लें सुकुमार हमें, सङ्कोच यही है!

राम

क्षण भर ठहरो, सुनो, तात अब कुछ कहते हैं,

दशरथ

(मुनि से)

ज्ञात न था यह मुझे—आप इतना सहते हैं!
माना, राक्षस आज प्रतापी और प्रबल हैं,
विधि के वर से अमरजयी उद्धत वे खल हैं।
किन्तु अभी तक नहीं नरों से काम पड़ा है,
इसी हेतु हो रहा उन्हें अभिमान बड़ा है।
सच्चे बल का बोध उन्हें अब हो जावेगा,
उनका सारा शौर्य समर में सो जावेगा।

विश्वामित्र

अमर जो न कर सकें उसे नर कर सकते हैं,
व्रत-साधन पर अमर भला कब मर सकते हैं ?
तुम से ही नर-लोक नाम सार्थक करता है,
सुनकर जिनका नाम दैत्य-दल भी डरता है !
तो विलम्ब है व्यर्थ, सुयश भूतल में लीजे ;
कार्य-सिद्धि के लिए राम-लक्ष्मरण को दीजे।

दशरथ

यह क्या, यह क्या, मुने ! अहा ! ये तो बालक हैं,

चारों भाई

हम बालक हों किन्तु वंश के व्रत - पालक हैं।

विश्वामित्र

(आक्षेप से)

ये बालक हैं और आप भी वृद्ध हुए हो,
मोह क्यों न हो, सभी प्रकार समृद्ध हुए हो !

दशरथ

क्षमा कीजिए देव, आपका अनुगत हूँ मैं ;
दयाशील हैं आप, सदा सम्मुख नत हूँ मैं।
ये गोदी के फूल वहाँ मुरझेंगे क्षरण में,

लक्ष्मण

(राम से)

आर्य, फूल क्या नहीं फूलते कण्टक-गण में ?
कहिए तो कुछ कहूँ ?

राम

रहो, मैं ही कह लूँगा,
पिता मोह-वश हुए, उन्हें सब समझा दूँगा।

दशरथ

वृद्ध हुआ मैं सही, किन्तु बल-वीर्य वही है,
जिससे रक्षित मुने ! आज भी महा मही है।
क्षत्रियशोणित वही नाड़ियों में बहता है,
साहस या उत्साह वही मुझमें रहता है।
इन हाथों के लिए कभी कुछ कठिन नहीं है,
जहाँ बढ़े ये, विजय आप आगई वहीं है।
आज्ञा दीजे देव, खेल-सा कर दिखलाऊँ,
निशाचरों में प्रौढ़ सूर्य्य की समता पाऊँ।
रण के सारे खेल खेलकर बैठा हूँ मैं,

दैत्यों के भी वार झेलकर बैठा हूँ मैं।
चलता हूँ बस अभी; हाय ! ये तो बच्चे हैं,
सच्चे फल हैं वंश-वृक्ष के—

विश्वामित्र

पर कच्चे हैं !
क्यों ? अच्छा बस रहो और अब कष्ट करो मत,
क्षोभ-दान कर मुझे क्षमा से भ्रष्ट करो मत।

राम

(कुछ बढ़कर)
शान्त हूजिए देव !
(दशरथ से)
तात, विनती है मेरी,
यद्यपि उसके योग्य नहीं गिनती है मेरी।
अपने कुल का सदा यही व्रत वर विधेय है,
दान-पात्र के लिए प्राण भी स्वयं देय है।

दशरथ

किन्तु पुत्र, तुम मुझे प्राण से भी हो प्यारे,
हो सकते हैं प्राण कहीं प्राणों से न्यारे ?

बड़े व्रतों से हाय ! हुए हैं जन्म तुम्हारे,
आँखों से क्या अलग करूँ आँखों के तारे!

राम

किन्तु हमारे लिए तात, तुमको क्या भय है?
धर्म-कार्य है, जहाँ धर्म है जय निश्चय है।
स्वयं प्राप्त यह पर्व हमें भी लेने दीजे,
सीखेंगे किस भाँति ? परीक्षा देने दीजे।
यदि राक्षस हैं क्रूर, शूर-सुत हैं तो हम भी,
रखते हैं उत्साह लड़े आकर यदि यम भी।
लक्ष्मण का तो बड़े वेग से भाव बढ़ा है,

भरत-शत्रुघ्न

करते हैं प्रस्ताव, हमें भी चाव चढ़ा है।
होंगे हम भी धन्य, धर्म का विघ्न हरें जो,
आज्ञा दें यदि तात और मुनि दया करें जो।

विश्वामित्र

(स्वगत)

रघुकुल के ही योग्य अहा ! इन सबके मन हैं,
मोह-मुग्ध क्यों न हों नृपति जिनके ये धन हैं?

दशरथ

मैं ऐसे नद-मध्य पड़ा हूँ मानों आकर—
बहता है जो हर्ष-शोक की लहरें लाकर !

राम

नहीं शोक का काम, राम की विनय मानिए,
मुनि को देते हुए हमें निज-निकट जानिए।
इनका तपः - प्रभाव मानता है सब कोई,
नूतन लोक - विधान जानता है सब कोई।
और हमारा कौन हितू है इनके ऐसा ?
मुझे याद है सभी सुना है मैंने जैसा।
अपने पितर त्रिशंकु, जिन्हें गुरु ने छोड़ा था,
उनको अपनाते न इन्होंने मुहँ मोड़ा था।
निज रवि-कुल की धर्म-परीक्षा लेते हैं ये,
इसी देह से उच्च स्वर्ग पद देते हैं ये !

दशरथ

हा ! अब मैं क्या कहूँ ? मुने, वह दोष न रखिए,
तोष पाइये और दास पर रोष न रखिए।

लीला

मेरे दोनों हाथ राम - लक्ष्मण प्रस्तुत हैं,
लीजे, अब से पिता आप हैं, ये दो सुत हैं।
और क्या कहूँ ?

विश्वामित्र

(सहर्ष)

मुझे विदित हैं भाव तुम्हारे,
हों मुझ जैसे पूर्ण मनः - प्रस्ताव तुम्हारे।
वत्स भरत, शत्रुघ्न, तुम्हें भी योग मिलेगा,
सदा पूर्ण शशि सदृश तुम्हारा सुयश खिलेगा।

४

स्थान—अयोध्या का राजप्रासाद

[कौशल्या और सुमित्रा]

कौशल्या

अबला जन का जन्म सहन के अर्थ है,
सौ सौ चिन्ता-भार-वहन के अर्थ है।
किन्तु वीरसू भाव भयङ्कर भाव है,
उसका कैसा हृदयहीन बर्ताव है!
होते जिनके लिए असंख्यक यत्न हैं,
जो आँखों की ज्योति, हृदय के रत्न हैं।
जीवन के आनन्द, पात्र जो स्नेह के,
भाग्य-वृक्ष के सुफल, दीप हैं गेह के।
जो उतारने योग्य नहीं हैं गोद से,
हैं रखने के योग्य हृदय पर मोद से।

उन्हें भेजना हाय ! राक्षसों के निकट ,
मनुजाहारी जो कि शस्त्रधारी विकट !
नारीकुल में जन्म विधाता दे कहीं ,
तो क्षत्राणी करे किसीको भी नहीं ।

सुमित्रा

जीजी, तब तो क्षात्रधर्म का लोप हो ,
अनाचार का सभी प्रकार प्रकोप हो ।
लूटपाट मच जाय, महा अन्याय हो ,
जन - समाज असहाय, प्रजा निरुपाय हो ।
देकर निज सर्वस्व - सार संसार में ,
रत रहती हैं हमीं लोक - उपकार में ।
त्याग, त्याग बस, त्याग हमारा धर्म है ,

कौशल्या

किन्तु बड़ा ही कठिन बहिन, यह कर्म है ।

सुमित्रा

तब तो सबको प्राप्त नहीं यह पर्व है ,
इस गौरव का एक हमींको गर्व है ।

कौशल्या

पर मैं कैसे गर्व करूँ उस बात पर—
जो अवलम्बित रहे कठोराघात पर ?
आत्मा से भी अधिक जहाँ देना पड़े,
और मृत्यु से अधिक जहाँ लेना पड़े ?

सुमित्रा

जीजी, करना जिसे लोक - हित - कार्य्य है,
उसे कठोराघात सहन अनिवार्य्य है।

कौशल्या

अन्य मार्ग क्या नहीं लोक-हित-कार्य का—
जो दर्शक हो त्याग और औदार्य का ?

सुमित्रा

दुष्ट-दमन का मार्ग लोक में है यही,
जीजी, प्यासी सदा रक्त की है मही।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह छलते यहाँ,
हिंसा, ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ फलते यहाँ।
इनके वश नर आप निशाचर हैं बने,
मानव दानव हुए, पाप में हैं सने।

करते वे अन्याय और उत्पात हैं,
नर होकर कर रहे नरों का घात हैं।

कौशल्या

तब तो वे हतभाग्य दया के पात्र हैं,
चेतन होकर हुए अचेतन मात्र हैं।
सदुपदेश क्या उन्हें न देना चाहिए ?
अनायास यह पुण्य न लेना चाहिए ?
बहिन, उचित उपदेश जहाँ वे पायँगे,
पशु से पुनः मनुष्य सहज बन जायँगे।

सुमित्रा

भोली जीजी, यही बात होती कहीं,
तो फिर क्या था, स्वर्ग उतर आता यहीं।
उठता हाहाकार गगनभेदी न यों,
होती शोणित-सिक्त स्वार्थ-वेदी न यों।
सदुपदेश सर्वत्र काम देता कहीं,
तो आदेश - विधान किया जाता नहीं।
दुष्ट जनों के लिए दण्ड ही धर्म है,
जिसका पालन सदा क्षात्र कुल कर्म है।

सदुपदेश से दुष्ट शिष्ट होते नहीं,
"गुड़ से सींचे, निम्ब मिष्ट होते नहीं।"

कौशल्या

हा ! तब तो यह वही बात फिर आ रही,
जिसकी चिन्ता रोम रोम में छा रही।
पापी राक्षस उधर विकट विकराल हैं,
इधर सहज सुकुमार हमारे बाल हैं।

सुमित्रा

भिन्न भिन्न है शक्ति और सुकुमारता,
तरुओं तक को तुहिन तनिक में मारता।
छोटा हो या बड़ा, धीर है धीर ही;
बाल, वृद्ध या युवा, वीर है वीर ही।
छोटा है जलयान, जलधि गम्भीर है,
नीर चीर कर तदपि पहुँचता तीर है।
घनाघात भी सहज झेलता हीर है,
यद्यपि दोनों का न समान शरीर है।
शूरोत्साह न किसी दशा में छूटता,
बाल सिंह भी मत्त गजों पर टूटता।

काट गिराता नकुल सहज ही नाग को,
ईंधन ही तो अधिक बढ़ाता आग को।

कौशल्या

बहिन, तुम्हारा धैर्य्य चकित करता मुझे,
फिर भी सुत-वात्सल्य थकित करता मुझे।
मैं अवशा तो स्नेह मात्र ही जानती,
पुत्रों को इसलिए मृदुल ही मानती।
मेरे लिए प्रबोध बना ही-सा नहीं,
आशङ्का ही मुझे दीखती सब कहीं!
बुद्धि तुम्हारी बात मानती है सही,
किन्तु हृदय में भीति - भावना भर रही।
मेरा दुर्बल मातृहृदय किसने रचा?

सुमित्रा

वह धाता है धन्य कि जिसने है रचा,
करुणा-जल का प्रेम-पद्म-सा वह बना,
सबका कुशल-क्षेम-सद्म-सा वह बना।
जीजी, सोच न करो, सोच का काम क्या?
घर बैठें, इसलिए हुए हैं राम क्या?

नारी का संसार गेह - परिवार है,
नर का कर्म-क्षेत्र विश्व संसार है।
माना, नारी-जन्म सहन के अर्थ है,
सौ-सौ चिन्ता - भार वहन के अर्थ है!
किन्तु सहन-सुख-सदृश कौन सुख है कहाँ?
गौरव है शत भार-वहन में ही यहाँ।

कौशल्या

पाकर शुभ साहाय्य तुम्हारा मैं बहन,
देखूँगी जो किया जा सकेगा सहन।
पर करने को क्रूर राक्षसों का दमन,
जा सकते थे क्या न राज्य के सैन्यजन?

सुमित्रा

देकर निज सामन्त बचाना आपको,
सह सकते क्या राम कभी इस पाप को?

कौशल्या

कभी नहीं, यह बहुत ठीक तुमने कहा;
हा! इतना भी ध्यान नहीं मुझको रहा।
चिन्ता से मैं आज मूढ़-सो हो रही,
छोटी-सी भी बात गूढ़-सी हो रही।

५

स्थान—एक वन-मार्ग

[दो राक्षस]

पहला

भाई अराल, भाई अराल !

अराल

क्या है मेरे प्यारे कराल ?

कराल

हैं तेरे तो कुछ अजब ढङ्ग,

अराल

कैसे ?

कराल

गिरगिट की तरह रङ्ग

तू पलट रहा है !

अराल

वाह वाह !

करात

हाँ, उदासीनता और चाह,
आसक्ति और कुछ-कुछ विरक्ति।

अराल

तू भी है बन्धु, विचित्र व्यक्ति!
सुख और साथ ही खिन्न भाव,
मिल सकते है क्या भिन्न भाव?

कराल

पर कहता था तू ही न मित्र,—
यह भरतखण्ड है अति विचित्र।
इसमें संग्रह है त्याग-युक्त,
अनुराग अपूर्व विराग-युक्त!

अराल

यह बात नहीं कुछ भी अलीक,
समझा तब तो तू मित्र, ठीक।
रखकर भी मन में महा वैर,
रक्खा है जब से यहाँ पैर—
मैं हुआ और का और आप,
मन मुग्ध हुआ इस ठौर आप!

छाया है कुछ ऐसा प्रभाव,
सब पलट रहे हैं प्रकृत भाव!
इच्छा है, बीते यहीं आयु।

करा‍ल

लग गई तुझे क्या मलय वायु?
हो जाय न तू पागल निदान,
बस, सावधान हो, सावधान!
वह सोने की लङ्का ललाम,
वह हम सबका सुख स्वर्गधाम।
वह जन्मभूमि जननी उदार,
तू सोच हृदय में एक वार।

अराल

मैं उसे नहीं भूला, कराल!
तो भी, तो भी कुछ अजब हाल—
होता है अपना मुझे ज्ञात;
कैसे मैं मन की कहूँ बात?
होता है कुछ ऐसा प्रतीत,
क्या जन्मभूमि मेरी पुनीत—

बस, लङ्का तक ही है समाप्त !
या भूतल में सर्वत्र व्याप्त ?
उस समय मुझे यह उपनिवेश–
है जान नहीं पड़ता विदेश !
जो कहीं और भी कहूँ स्पष्ट,
तो होगा तुझको व्यर्थ कष्ट।

कराल

भाई, मुझसे किसलिए भेद ?
होता मन में है मुझे खेद।

अराल

मैं भूल गया, सुन सत्य बात—
यदि किया न जावे पक्षपात
तो भरतखण्ड - सा भूमि - भाग
अन्यत्र नहीं,

कराल

हा ! मोह-नाग
कर गया यहाँ तुझमें प्रवेश,
सबको प्रिय लगता है स्वदेश।

पर करके यहाँ विशेष वास,
तू हुआ सखे, उससे उदास!
क्यों?

करार

और यहाँ तू है नवीन,
इससे रहता है ध्यान-लीन।
क्या आँख लड़ी है वहाँ मित्र!
जो याद आ रही यहाँ मित्र?

करार

बस, लगन तुझीसे लगी मित्र!
वह बाल्यकाल से जगी मित्र!
ले आई वही समुद्र-पार,
पर पलट गया तू सब प्रकार!

अराल

यह क्या कराल? तू है अभिन्न,
क्यों होता है इस भाँति खिन्न?

कराल

मैं दुःखित हूँ मन में महान,
तुझमें न देखकर स्वाभिमान!

सोने की किसकी जन्मभूमि ?
तू है वह जिसकी जन्मभूमि
पीकर भी उसका दिव्य दुग्ध,
तू भरतखण्ड पर हुआ मुग्ध !
क्या धरा यहाँ ? बस, है विरक्ति,
क्या अपनी-सी है कहीं शक्ति ?
मनुजों की तो क्या तुच्छ बात,
सुर कम्पित हैं दिन और रात !
सेवक-से हैं मारुत, कृशानु;
वन्दी-सम हैं ग्रह चन्द्र, भानु !
रखते हैं सब सिर पर निदेश,
अपना जैसा है कौन देश ?

अराल

तप के जिस फल से अनायास
इस बल-वैभव का है विकास,
कर सकता उसका कौन त्याग ?
भारत करता है सानुराग ?
फिर कह सुवर्ण-लङ्का समूल,
इसके आगे हो क्यों न धूल ?

कराल

कुल-देव तुझे दें क्षमा - दान,

अराल

पर सत्य सुने, मूँदे न कान।
प्रिय मित्र, देख तू नेत्र खोल,
निज दृष्टि - तुला पर आप तोल—
यह स्वाभाविक सौन्दर्य्य भाव,
कुछ नहीं कहीं कृत्रिम दिखाव।
वह कहाँ लूट का विभवपुञ्ज ?
यह कहाँ सहज शोभा - निकुञ्ज ?
जो वायु वहाँ पर बद्ध, दीन,
वह मुक्त यहाँ बन्धन - विहीन,
शीतल, सुगन्ध - परिपूर्ण, मन्द,
करती है मानो नेत्र बन्द !
वह चारु चन्द्रिका, रजत - रात,
चन्दन - चर्चित - सा गगन - गात !
निज होम शिखा - हुत मांस-हव्य,
है कभी यहाँ की भाँति भव्य ?

रवि-चन्द्र यहाँ निज कुल-समेत
हैं बना चुके निज निज निकेत।
अन्यत्र कहीं देखा न हन्त,
आलोकित यों उज्वल अनन्त!
मिलकर असीम में, फूल फूल,
जाता हूँ मैं अस्तित्व भूल!
वह उच्च हिमालय भव्य भाल,
देखा है क्या तूने कराल?

करात

देखा है,

अराल

फिर दृग - लाभ लूट;
क्या तुच्छ यहाँ तेरा त्रिकूट!

कराल

मेरा त्रिकूट? फूटा कपाल!
तुझपर यह कैसा इन्द्रजाल?

कराल

हाँ इन्द्रजाल ही, किन्तु सत्य,
करता है मुझपर आधिपत्य।

वे निर्मल नदियों के प्रवाह,
हैं द्रवित देख भव - दुःख - दाह !
कान्तार कहीं प्रान्तर निहार,
उनमें अलक्ष्य का स्फुट विहार !
तरुराजि कहीं गिरिराजि रम्य,
मन से सुगम्य, तन से अगम्य !
अवलोक अन्न के भरे क्षेत्र।
हो उठते हैं झट हरे नेत्र,
जनपद, पुर, पत्तन और ग्राम,
धन-धान्य भरे विश्राम - धाम,
यह देख, तपोवन मुक्ति - मूल ;
रहते हैं पशु भी वैर - भूल !
हम करें यहाँ पर क्यों न क्रान्ति,
मिट सकती है क्या सहज शान्ति ?
सुनकर मानो अव्यक्त गान,
गूँजा करते हैं नित्य कान।
उठती है उर में एक तान—
आत्मा, उठ, तू कर अमृत पान !

कराल

ऐसा है, तो सब काम छोड़,
लंकेश्वर से कह हाथ जोड़,
वे होकर उन्नति से उदास,
अब करें यहीं आकर निवास!
हों धर्मभीरु वे कर्म-शूर,
फेकें वह अपना मुकुट दूर।
बस, रक्खें सिर पर जटा-जाल,
ज्यों शैल श्रृङ्ग पर घटा-जाल!
छोड़ें सिंहासन, स्वाभिमान,
हों तृणासनस्थित-जड़-समान।
सुन सुन तेरा अव्यक्त गान,
बस, किया करें दृग मूँद ध्यान!

अराल

तू हँस चाहे कर क्यों न क्रोध,
होता है मुझको यही बोध—
पाकर हम सबका स्पर्श हाय!
यह भूमि कलङ्कित हो न जाय!

कराल

अति करदी तूने मित्र, आज ;
आती है सुनकर मुझे लाज।
निज जन्मभूमि है स्नेह-गेह
शत-शत सम्बन्ध निबद्ध देह—
रहती है उसमें।

अराल

और प्राण ?

कराल

पाते हैं वे भी वहीं त्राण।
अद्भुत है अपनी प्रकृति-सृष्टि,
पर नया चाहती नित्य दृष्टि।
उस गंगा में भी डूब डूब,
तू यहाँ उठेगा क्या न ऊब ?-
जो हो, अब अवसर नहीं और,
रहना सतर्क तू इसी ठौर।
इस वन का वह तापस प्रधान
करता है जो वक-तुल्य ध्यान,

रखता है ऐसा जटाजूट
पकड़ें तो फिर पावे न छूट ;
जिसकी डाढ़ी यदि लें उखाड़
तो झाड़ू करके सकें झाड़ !
खा खाकर मख की खीर-खाँड़
जो बना एक अति विकट साँड़ !
क्या विश्वामित्र कि शत्रु नाम ?
रटता है ऋक्, यजु और साम ;
गल सकी यहाँ जिसकी न दाल ,
लेना उसका सब हाल चाल।
मैं देखूँ तब तक अन्य कार्य ,

अराल

यह आज्ञा तो थी शिरोधार्य
पर, भाई—

कराल

बस, पर-पक्ष काट
रख अपना ही सब ठाठबाट।
पर पर करके तू उड़ न जाय ,
पर बनकर, पर से जुड़ न जाय।

बस, मार परों को घेर-घेर,
कुल-गौरव पर पानी न फेर।

अराल

अच्छा, अच्छा, अब तू सिधार,
फिर बातें होंगी एक वार।

कराल

मुझको भी है इस समय काम,
अच्छा, प्रणाम–

अराल

भाई, प्रणाम!

(कराल जाता है)

यों कहता है मुझसे कराल,
पर हे मेरे मानस-मराल!
तू मग्न हुआ है एक साथ,
अब क्या उपाय रह गया हाथ?
इस भू पर करने को निवास,
रहते हैं सुर भी साभिलाष–

होता प्रवाद यह सत्य ज्ञात,

(नेपथ्य में)

आश्रम समीप आगये तात!

अराल

एं, हुआ कहाँ यह सु-प्रलाप?
आया क्या विश्वामित्र आप!

(राम - लक्ष्मण सहित विश्वामित्र का प्रवेश)

हाँ, कौशिक ही है किन्तु अन्य—
पीछे पीछे हैं कौन ? धन्य!
ये श्याम - गौर शोभा - निधान,
दो दिव्य बाल हैं दीप्तिमान।
बालक तो हैं पर हैं गभीर,
जँचते हैं क्या ही धीर - वीर!
सुगठित शरीर, उन्नत ललाट,
आजानुबाहु, वक्षः - कपाट,
कोदण्ड लिये, बाँधे निषंग,
करते हैं मन्मथ - मान भंग!
भय - रहित दृष्टि, लोचन विशाल,
गज - शावक की - सी चाल-ढाल।

मुख पर उत्सुकता पूर्ण कान्ति,-
करती सुधांशु की प्रकट भ्रान्ति!
ये काक पक्ष धारी कुमार
करते हैं मन पर स्वाधिकार!
अवतार-भूमि यह है प्रसिद्ध,
हो रही सत्यता आज सिद्ध!
सब भावों पर माधुर्य भाव
दिखलाता है अपना प्रभाव।
लंके! हा लंके, हेमगात्रि,
सांसारिक सुख की परम पात्रि!
क्यों तेरे सुत हैं विकृतवर्ण?
लघुनेत्र, वक्रमुख, दीर्घकर्ण!
जो हो, छिपकर देखूँ विशेष,
हो रहे नेत्र भी निर्निमेष!

(वैसा ही करता है)

विश्वामित्र

आश्रम - समीप आगये राम!

अराल

क्या ही सार्थक है 'राम' नाम!

राम

मैं हुआ मुने ! कृतकृत्य आज,
करता मयूर - मन नृत्य आज;
सुख उमड़ रहा है एक साथ।

विश्वामित्र

अब करौ तपोवन को सनाथ।

राम

हे आश्रम - वासी जीव - जन्तु,
भय छोड़ तोड़ दो खेद - तन्तु;
रक्षक है सानुज रामचन्द्र।

अराल

यह श्याम-मेघ है वचन मन्द्र।

(नेपथ्य में)

यह कौन दे रहा अभय-दान ?
मैं भीति - मूर्ति हूँ, सावधान !

अराल

हा ! यह तो है ताड़का - नाद !
उपजाता है कैसा विषाद ?

आई जो यह आँधी प्रचण्ड,
उड़ जावेगा यह जलद-खण्ड।
इस मुनि ने यह क्या किया हाय!
अब रक्षा का है क्या उपाय?

ताड़का

(प्रवेश कर)

यह कौन दे रहा अभय-दान?
मैं भीति-मूर्ति हूँ, सावधान!

विश्वामित्र

हे वत्स, घुणाक्षर-न्याय-मूर्ति,
है यही ताड़का पाप-पूर्ति।

राम

मनुजत्व और पशुभाव-मेल,
यह हुई हमारे लिए खेल!
क्यों लक्ष्मण?

लक्ष्मण

मैं क्या कहूँ आर्य,
यह भी विधि का है एक कार्य।

राम

री राक्षसि, क्या है तुझे इष्ट ?

ताड़का

तुम दोनों का शोणित सु - मिष्ट,
पर इसके पहले तनिक देर
खेलूँगी तुमको घेर - घेर !

राम

पर यहाँ स्त्रियों का सदाचार—
इसके विरुद्ध है सब प्रकार।
अब क्या है ?

ताड़का

कुछ कारुण्य-बोध—

राम

उसमें है तेरा गुण - विरोध।

अराल

सारल्य और प्रागल्भ्य धन्य,
इन दोनों में है प्रकृतिजन्य !

विश्वामित्र

हे वत्स, देर मत करो और,
मारो तुम इसको इसी ठौर।

राम

आदेश आपका शिरोधार्य;
पर है यह अबला जाति आर्य!
वे दिये आपके दिव्य अस्त्र,
अथवा मेरे ही श्रेष्ठ शस्त्र
क्या चलें इसीपर प्रथम वार?

विश्वामित्र

हे वत्स, व्यर्थ है यह विचार।
छोड़ो न इसे स्त्री जाति जान,
मारो पुरुषों की मृत्यु मान!
पहने है देखो मुण्डमाल,
आँतों की तगड़ी अति विशाल।
करती है यह अति अनाचार,
अबला है फिर यह किस प्रकार?
गो-ब्राह्मण और स्वदेश-हेतु
मारो इसको कुल-कीर्ति-सेतु!

राम

जो आज्ञा ,

अराल

आहा क्या प्रताप !
ये चढ़ा रहे हैं कठिन चाप ,
कर रहा काल क्या भृकुटि - भंग ?
लो चढ़ा, बाण भी चढ़ा संग !

(ताड़का राम की ओर दौड़कर उनके बाण से गिरती है)

विश्वामित्र

वर्द्धस्व वत्स ! बिंध गया लक्ष ,
हत हुई पापिनी यह समक्ष ।

अराल

(भौंचक-सा)

यह गिरी ताड़का ताड़ - तुल्य !
उर बिंधा मजीठ - पहाड़ तुल्य !
अब मेरा क्या कर्तव्य - कर्म ?
हा ! भूल गया क्या मैं स्वधर्म ?
इस बालक का कैसा प्रभाव ,
देकर भी उर में घोर घाव—

बन रहा प्रशंसा - पात्र हाय !
अवसन्न हुआ क्यों गात्र हाय !
आ, ओ कराल ! यह सब विलोक,
इस बल पर ही वह गर्व, शोक !
रे क्रोध, हृदय में जाग जाग,
रे सदय भाव, तू भाग भाग।

(प्रकट होकर)

दौड़ो हे राक्षस - गण समर्थ,
यह हुआ यहाँ कैसा अनर्थ !

राम

(देखकर)

रे राक्षस, तुझको दिया छोड़,
जा, ले आ तू निज सैन्य जोड़।

६

स्थान—अयोध्या, राजभवन

[भरत, शत्रुघ्न, धीर और गम्भीर]

शत्रुघ्न

आर्य, कई दिन से इधर शिथिलित हुआ शरीर,
आज घूम आवें चलो, सरयू के ही तीर।

भरत

जब से आर्य चले गये कौशिक मुनि के संग,
तब से मेरे चित्त में उठती नहीं उमंग।

धीर

कभी न भूलेगा मुझे उस बुड्ढे का चित्र,

गम्भीर

मैंने तभी कहा न था—यह है 'विश्वामित्र!'
स्वार्थीजन करते नहीं सचमुच दोष-विचार।

धीर

'जहँ सन्तन के पग परे कीन्ह्यो बंटाढार !'

भरत

चुप, ऐसा कहते नहीं, वह था धर्माचार,
सबकी रक्षा का सदा राजा पर है भार।

गम्भीर

तो क्या सेना थी नहीं और न थे हम लोग ?

शत्रुघ्न

रखता होगा हेतु कुछ मुनि का यह उद्योग।

गम्भीर

एक हेतु तो खुल गया—सुता-स्वयंवर ठान,
भेजा आमन्त्रण यहाँ मिथिलाधिप ने मान—
सहित, और आग्रह-साहित, राम विना वह आज,
व्यर्थ गया;

शत्रुघ्न

सचमुच वहाँ होगा बड़ा समाज।
दूर दूर से आयँगे बड़े बड़े भूपाल,

धीर

ज्योंनारें होगीं वहाँ और उड़ेंगे माल।

शत्रुघ्न

अरे, जनक का माल भी खा न सका तू

धीर

हाय !

उस बुड्ढे की जान को रोता हूँ निरुपाय ।

भरत

देने को संवाद यह लेने को वृत्तान्त,

दूत गये हैं मुनि - निकट बुद्ध और विश्रान्त ।

(वीर का प्रवेश)

वीर

आर्य, लौटकर आगये वे दोनों ही दूत,

भरत

(उत्सुकता से)

सकुशल तो हैं आर्य ?

वीर

हाँ,

धीर

एवं वह अवधूत ?

वीर

सब सकुशल हैं, जनक ने मुनि को भी सस्नेह,
किया स्वयंवर के समय आमन्त्रित निज गेह।
मुनि ने भी अनुनय सहित विनय भूप की मान,
आर्य राम-लक्ष्मण-सहित किया उधर प्रस्थान।
कहलाया है आपसे प्रभु ने यह सन्देश—
"अनुज, न रखना चित्त में तुम चिन्ता का लेश।
अकुशलता का काम क्या तपोधनों के संग,
होते हैं प्रतिदिन यहाँ नूतन कथा-प्रसंग।
दिव्य अस्त्र मुनि ने दिये, हुआ सहज मख पूर्ण,
राक्षस-गण का मद हुआ सम्मुख रण में चूर्ण।
विद्याएँ हमको हुईं बला-अतिबला प्राप्त,
भूख, प्यास, श्रम कुछ नहीं होता जिनसे व्याप्त।
मिलकर तुम्हें बतायँगे हम उनकी सब रीति,
सकल सखाओं के सहित रहना तुम सप्रीति।"

भरत

सिरमाथे है आर्य्य का सानुग्रह आदेश,

शत्रुघ्न

सम्मुख-से वे हैं खड़े रक्खे सुन्दर वेश!

धीर-गम्भीर

अहोभाग्य, भूले नहीं जो हमको भी आर्य ,

शत्रुघ्न

अब भी क्या समुचित न था कौशिक मुनि का कार्य ?

गम्भीर

समुचित ही था,

धीर

किन्तु यदि होते हम भी साथ—

शत्रुघ्न

तो क्या होता ?

धीर

मारते लम्बे - चौड़े हाथ !

७

स्थान—जनकपुर का राजोद्यान

ऊर्मिला

[झूला झूलती हुई]

[गान]

तेरा यह संसार मुझे तो
झूले - सा मनभाता है,
प्रभो, शून्य में तू ही इसको
स्वगुणों से ठहराता है।
जब जब नहीं सँभल पाता यह,
ऊँचे चढ़ नीचे आता वह।
तब तब तू फिर पेंग बढ़ाकर
ऊँचा इसे चढ़ाता है,
तेरा यह संसार मुझे तो
झूले - सा मनभाता है।
निर्भय मैं इसमें झूलूँगी,
झोंकों की चिन्ता भूलूँगी।

ऊपर जा जाकर अनन्त सुख
यही अवनि पर लाता है,
तेरा यह संसार मुझे तो
झूले - सा मनभाता है।

(ऊर्मिला की सखी सुलक्षणा का प्रवेश)

सुलक्षणा

ईश करे ऐसा ही हो, तुम
अनुपम गौरव पाओ,
फूल चुन लिये ?

ऊर्मिला

कब के,

सुलक्षणा

तो फिर
चलें, चलो अब, आओ।

ऊर्मिला

तनिक ठहर जा, जब तक जीजी
अम्बुज लेकर आवें—
पुष्करिणी से, तब तक हम भी
झूले का सुख पावें।

क्या श्रुतिकीर्ति-समेत माण्डवी
पहुँच गईं मन्दिर में ?

सुलक्षणा

वीणा वहीं मिलाती हैं वे
बैठी हुईं अजिर में।

ऊर्मिला

जीजी भी आती हैं,

सुलक्षणा

तब तक
मैं ही तुम्हें झुलाऊँ,
नन्दन वन की देव-सुता का
सब अभिमान भुलाऊँ।

ऊर्मिला

सखि, देवत्व सभी बातों में
क्या सबसे उत्तम है ?

सुलक्षणा

ठीक नहीं कह सकती हूँ मैं,
मनुष्यत्व क्या कम है ?

लीला

कल कौशिक के साथ यहाँ दो
नृप - कुमार आये हैं,
देवों से भी बढ़ - चढ़कर वे
सबके मन भाये हैं!

ऊर्मिला

तूने अच्छी बात सुनाई,
बस अब मुझे झुला दे,
नन्दन वन की देव - सुता का
अपना भान भुला दे।

(सुलक्षणा झुलाती है)

(बाईं ओर फूल चुनती हुईं सखी के साथ सीता आती हैं)

सीता

सखि सुगन्धिके, रह जा, बस अब,
इतने फूल बहुत हैं,
लतिकाओं में लगे हुए वे
अद्भुत शोभायुत हैं!
खोकर अपने लाल लताएँ
सूनी हो जावेंगी,

आदि शक्ति भगवती भक्ति ही
पाकर सुख पावेंगी।

सुगन्धिका

जैसी इच्छा, हृदय तुम्हारा
कितना करुणामय है!
किन्तु हाय! हम सबके मन में
सोच और अति भय है।
किस कु-क्षण में शम्भु-चाप को
तुमने हाथ लगाया?
जिसके पण पर तुम्हें पिता ने
प्रण के साथ ठगाया!

सीता

इसे ठगाना कहते हैं क्या?

सुगन्धिका

तुम यह क्या कहती हो?
अपनी ओर आप ही तुम क्यों
उदासीन रहती हो?
प्रथम सोच था यही—न जानें
उसको कौन चढ़ावे;

अब यह चिन्ता है—कोई तो
सिद्धि - सफलता पावे।
बड़े बड़े बलशाली आये,
सबने शक्ति दिखाई;
चाप हिला तक नहीं, तुम्हारे
बदले लज्जा पाई!
हा! अब क्या होगा?

सीता

जो होगा
अच्छा ही होगा सब,

सुगन्धिका

पर वह कब होगा?

सीता

हे आली,
अवसर आवेगा जब।

सुगन्धिका

अब तक जो कुछ हुआ हाय क्या!
अच्छा हुआ?

सीता

नहीं तो,

बुरा हुआ क्या ? हुई परीक्षा

सुगन्धिका

है आपत्ति यहीं तो।

सीता

सो कैसी ?

सुगन्धिका

ऐसी कि पात्र ' का
हुआ कहीं न ठिकाना,

सीता

पर क्या अच्छा था अपात्र के
हाथों में पड़ जाना ?

सुगन्धिका

माना, पर क्या तुम्हें कुमारी
रहना नहीं पड़ेगा ?

सीता

तात-मात का विरह-दुःख तो
सहना नहीं पड़ेगा ?

सुगन्धिका

इस भोलेपन को तो देखो,
विधि को क्या करना है ?

सीता

जो करना है वही करेगा,
उससे क्या डरना है?

(सुगन्धिका चिन्तित-सी होती है। इसी समय ऊर्मिला बाईं ओर देखती है और सीता को देखकर सुलक्षरणा से कहती है)

ऊर्मिला

सुगन्धिका से बातें करती
जीजी आती हैं वे,

सुलक्षरणा

(देखकर)

प्रीति बढ़ाती हो तुम मेरी,
भक्ति बढ़ाती हैं वे।

ऊर्मिला

मेरी जीजी ऐसी ही हैं
मेरे हित तो आली!
हैं ये ही प्रत्यक्ष भवानी
सर्व सिद्धियों वाली।

(दोनों उसी ओर चलती हैं)

सीता

सुगन्धिके, तू अपने मन में
वृथा सोच करती है,
आली, मुझे झेलने वाली
मेरी माँ धरती है।
उसपर जो होगा—एँ, तेरी
आँखें क्यों भर आईं?
देख, देख, ये सुलक्षणा-युत
बहन ऊर्मिला आईं!

(सुगन्धिका अपने को सँभालती है)

सीता

(ऊर्मिला से)

पूजन-सामग्री प्रस्तुत है?

ऊर्मिला

हाँ जीजी,

सीता

तो आओ,

सुगन्धिका

ईश्वर करे, भवानी से तुम
आज योग्य वर पाओ।

ऊर्मिला

जीजी, सुलक्षणा कहती है
,दो कुमार आये हैं,
सुनो इसीसे, इसने उनके
क्या क्या गुण गाये हैं।

(सीता सुलक्षणा की ओर देखती है)

सुलक्षणा

श्याम - गौर शोभा - निधान वे
सबके मनभाये हैं,
विश्वामित्र महामुनि अपने
साथ उन्हें लाये हैं।
अपने महाराज ने उनका
प्रेमातिथ्य किया है,
पुत्र-समान मानकर उनको
उत्तम वास दिया है।

कोसलेश दसरथ के दोनों
पुत्र परम प्यारे हैं,
यहाँ दर्शकों की आँखों के
बने विमल तारे
सजल कमल - से मञ्जुल मुख हैं
दृग युग जिनके दल हैं,
कलित कपोलों में प्रतिविम्बित
ललित लोल कुण्डल हैं।
अंग अनंगाश्रय हैं उनके,
धनुर्बाण शोभन हैं;
शौर्य-शील-सम्पन्न, सरल, शुचि,
दर्शक - दृग - लोभन हैं!

सुगन्धिका

हाय! कहीं ऐसे वर मिलते?

ऊर्मिला

तो तू उनको वरती?

सुगन्धिका

तुम हँसती हो पर है मेरी
छाती धक - धक करती।

सीता

(सुलक्षणा से)

हाँ, फिर ? अहा मुझे सुनने की !
अभिलाषा होती है,

सुलक्षणा

अधिक क्या कहूँ, एक नीलमणि
और एक मोती है !
भूतल और नभस्थल दोनों
उनपर बिक जावेंगे,
तो भी उन अनुपम रत्नों का
मोल नहीं पावेंगे !
चाप - चढ़ाने की इच्छा भी
रखते हैं वे मन में,

सीता

अहा ! आप उत्साह प्रकट है
उनके इस साधन में !

सुगन्धिका

पर उनका यह कैसा साहस ?

ऊर्मिला

क्षत्रियवंशोचित है,

सुगन्धिका

जो हो, यह असाध्य साधन भी
केवल
(सीता की ओर संकेत करके)
इनके हित है ।
इनके रूप - गुणों का वर्णन
सबको बुला बुलाकर,
प्रेरित करता है लज्जाप्रद—
फल का ध्यान भुलाकर !
फिर भी, वे कोमल हैं, जैसा
आली ने बतलाया,

ऊर्मिला

जीजी कोमल न थीं जिन्होंने
धन्वा सहज उठाया ?

सुलक्षणा

वे कोमल हैं, किन्तु साथ ही
विदित वीर्य वाले हैं,

कौशिक-मख के विघ्न उन्होंने
अनायास टाले हैं!
मार ताड़का, कर सुबाहु-वध,
है मारीच उड़ाया;
हक्का बक्का कर असुरों का
छक्का आप छुड़ाया।
यही नहीं, उनकी महिमा से
शिला बनी सुकुमारी,

ऊर्मिला

तो क्या धनुष न कोमल होगा?

सुलक्षणा

तरी अहल्या नारी!
इस कारण तुम जन साधारण
उन्हें कभी मत लेखो,
घर आये वर पाये समझो,
(दाईं ओर अलग राम-लक्ष्मण का प्रवेश)
अरे, अरे, ये देखो!

सीता और ऊर्मिला

(देखकर)

अहा ! कौन ये ?

राम-लक्ष्मण

(देखकर)

अहा ! कौन ये ?

सीता और ऊर्मिला

क्या छवि है !

राम-लक्ष्मण

क्या छवि है !

सुगन्धिका

यह छवि वर्णन करे भला क्या
ऐसा कोई कवि है ?

राम

लक्ष्मण, लिये फूल-फल हमने
मुनिवर के पूजन को
पर देखो तो मिथिलाधिप के
इस अनुपम उपवन को

वन देवियाँ प्रकट-सी इसमें
ये वर बालाएँ हैं,
एक जाति के फूलों की-सी
दो दो मालाएँ हैं।

लक्ष्मण

आर्य, आलियों के समेत ये
कोई दो बहनें हैं,
तुल्य रूप हैं, तुल्य शील हैं,
तुल्य वस्त्र-गहनें हैं।

राम

सचमुच !

सीता

ये दोनों भाई भी
सुमन-हेतु हैं आये,

ऊर्मिला

हाँ, हथेलियों पर शोभित हैं
दोंने भरे भराये !

सीता

इन्हें देखकर मेरे मन में
होती है अति ममता,

ऊर्मिला

ऐसे सौम्य, सरल भावों की
दुर्लभ ही है समता।

राम

इनसे बातचीत करने को
मेरा मन करता है,

लक्ष्मण

इनका प्रिय दर्शन ही मन में
सुहृद्भाव भरता है।

सुगन्धिका

ये दो दो जोड़ियाँ बनाकर
विधि न मिलावेगा क्या ?

सुलक्षणा

तू ही कह, विधि वृथा परिश्रम
करके पावेगा क्या ?

सुगन्धिका

तेरा ही विचार सच्चा हो,
मेरी चिन्ता छूटे ;

सुलक्षरा

ऐसा ही होगा सखि, जिससे
सब कोई सुख लूटे।

सीता

अपने घर आये का आदर
बहन, सदा समुचित है,
पर इस उपवन के सुमनों की
भेट बहुत ही मित है।

ऊर्मिला

पत्र, पुष्प, फल, जल, जो कुछ है
श्रद्धा - युत प्रस्तुत है,
किन्तु सुमन ही इन्हें इष्ट थे,
सुविधा यही बहुत है।

लक्ष्मरा

हमको देख देख ये सब भी
कुछ कहती जाती हैं,

राम

भैया, सोचो तो, ये मन में–
क्या विचार लाती हैं?

लक्ष्मण

आर्य, सोचना क्या है इसमें ?
जो हैं भाव हमारे,
इनके मुख - मुकुरों पर मानो
प्रतिविम्बित हैं सारे !

राम

यही बात है, हमको अपना
अतिथि मानती हैं ये,
फिर भी, परिचय विना मौन ही
उचित जानती हैं ये ।

लक्ष्मण

कुलकुमारियाँ हैं इस कारण

सीता

सखि सुलक्षणे, जाओ ;
कहाँ गईं श्रुतिकीर्ति - माण्डवी
उन्हें बुला ले आओ ।

वे भी इनके भव्य भाव के
शुभ दर्शन कर लेंगी,
और नहीं तो फिर हम सबको
बहुत उलहना देंगी।

सुलक्षणा

अभी बुलाये लाती हूँ मैं

सुगन्धिका

पर अब देरी होगी,
ये भी अधिक नहीं ठहरेंगे,
कल फिर फेरी होगी।

सीता

यही सही, उनकी सखियाँ भी
उधर गीत गाती हैं,

(नेपथ्य में गान)

(गीत)

ऊषा ! जीवन की ऊषा !
तू है इस भव की भूषा !

तू लाली ले आती है,
जगमग ज्योति जगाती है,
इष्ट मार्ग दिखलाती है,
करके प्रकट पुण्य - पूषा !
ऊषा ! जीवन की ऊषा !

प्रेम - पद्म खिल उठते हैं,
मनोमधुप मिल उठते हैं,
जड़ तक भी हिल उठते हैं,
खुलती है मुद - मंजूषा !
ऊषा ! जीवन की ऊषा !

राम

भैया लक्ष्मण, सुना ?

लक्ष्मण

सुना, क्या
मधुर गान गाया है !

सुगन्धिका

(सुलक्षणा से)

सखी, गीत तो समयोचित है,

सुलक्षणा

आशय मनभाया है।

सुगन्धिका

इधर देख, ये मधुर मूर्तियाँ
सब सुधबुध भूली हैं,
खिले तमाल - कदम्ब, मालती–
यूथी - सी फूली हैं!
किन्तु अधिकता उचित नहीं है,
क्या हो अभी न जानें,
तो मैं इनको सजग करूँ अब
लाऊँ ठीक ठिकानें।

सुलक्षणा

ऐसा ही कर, यद्यपि इससे
बाधा होगी मन को;

सुगन्धिका

राजकुमारी, चलो, चलें अब
गिरिजा के पूजन को।

सुलक्षणा

किन्तु छोड़कर सम्मुख दर्शन
कौन वहाँ पर जावे ?

सीता

(चौंककर)

ऐं, क्या, हाँ, परन्तु, अच्छा तो,
जैसा तुमको भावे !

राम

(स्वगत)

हिलुर गई है अहा ! पद्मिनी,
मानों मधुप उड़े हैं ;
पर मेरे दृग उन जैसे ही
अब भी वहीं जुड़े हैं।

सुगन्धिका

तुम्हें नहीं भाता क्या कुछ भी ?

सीता

मैं कुछ सोच रही थी,

ऊर्मिला

(स्वगत)

जीवन की सब घटिकाओं में

'झटिका एक यही थी!

सुलक्षणा

भला कहो तो अब तुम मुझसे—

ये कुमार कैसे हैं?

सीता

देख मात्र सकती हूँ मैं तो,

सुगन्धिका

मंजु मार जैसे हैं!

सीता

मैंने उसे नहीं देखा है,

ऊर्मिला

तनु ही उसे कहाँ है!

सुगन्धिका

हुआ हुआ, इन-से ये ही हैं,
अब क्यों देर यहाँ है?
बीतेंगे पल के समान युग
हमको खड़े खड़े यों,

सीता

चलो,

सुगन्धिका

(स्वगत)

चाप - कर्षण से पहले
हा! ये दीख पड़े क्यों?
शिवे, शुभे, माँ, अब तुम जानो!

राम

देखो, ये जाती हैं,
मुझे उदास भाव की लम्बी
साँसें - सी आती हैं।
भैया लक्ष्मण, जनक - नन्दिनी
यही ज्ञात होती है,

मन्द-मन्द पग रखकर मानो
पुण्य - बीज बोती है !
इसे देखकर मेरा मन क्यों
मुग्ध हुआ ? विधि जानें ;
अथवा सच्चे रूप - शील की
महिमा कौन न मानें ?
कुछ रहस्य इसमें अवश्य है,
मन का साक्षी मन है,
सदय हृदय का विनिमय ही शुभ
सांसारिक जीवन है।
जिससे पीछे भी प्रमोद हो
वही कर्म्म है भ्रातः !
सच्चा प्रेम प्रकाश करे जो
वही धर्म्म है भ्रातः !

लक्ष्मण

आर्य, दैव को भी अभीष्ट है
यदि तुम ऐसा चाहो,
तब तो वह प्रण किया जनक ने
जिसको तुम्हीं निवाहो !

८

स्थान—जनकपुर, राजमार्ग

[दो राजा]

पहला

आप किस द्वीप के नरेन्द्र - कुल - दीप हैं ?

दूसरा

तुम, तुम, आप भी तो जँचते महीप हैं !

पहला

अपनी प्रजा का एक मैं भी कर्मचारी हूँ,

दूसरा

ऐसा क्या ? तथास्तु, मैं तो राजदण्डधारी हूँ !

पहला

क्यों न हो, पिनाक देखा ?

दूसरा

उसमें क्या मन्त्र है ?

पहला

जी नहीं, न मन्त्र, है, न तन्त्र है, न यन्त्र है।

दूसरा

तो फिर क्या और कुछ कौशल या छल है ?

पहला

यह भी नहीं है,

दूसरा

तब ?

पहला

गौरव है, बल है।

दूसरा

फिर क्यों हिला भी नहीं ?

पहला

आप ही विचारिए,

दूसरा

मैं ? मैं क्या विचारूँ भला ?

पहला

थोड़ा, धैर्य धारिए।

दूसरा

कहिए ?

पहला

मैं कहता हूँ, पूछिए भुजों से आप,

दूसरा

पूर्ण बल उनमें है,

पहला

फिर क्यों चढ़ा न चाप ?

दूसरा

मैं भी यही सोचता हूँ,

पहला

सोचिए, मैं जाता हूँ;

दूसरा

सुनिए तो, सुनिए तो, मैं कुछ सुनाता हूँ।

पहला

(स्वगत)

छेड़ा है कहाँ से इसे ?

(प्रकट)

क्या है ? कह जाइए ;

दूसरा

कहता हूँ, कहता हूँ, थोड़ा रह जाइए।
सुनिए, सुना है, वह चाप है न शिव का ?

पहला

हाँ,

दूसरा

वह दिगम्बर है ?

पहला

दायक है दिव का।

दूसरा

रहता मसान में है ?

पहला

मुक्ति - दानकारी है,

दूसरा

भूत - प्रेत रखता है ?

पहला

पञ्चभूत धारी है।

दूसरा

देव इस देश का है ?

पहला

हाँ हाँ, महादेव है,

दूसरा

तो तो वह तान्त्रिक है, है, अवश्यमेव है !

पहला

इससे क्या ?

दूसरा

इससे क्या ? जाना नहीं अब भी ?

इससे क्या ! अच्छे रहे !

पहला

भाई, सुनूँ तब भी ?

दूसरा

हाँ, तो, उस चाप में न यन्त्र है न तन्त्र है ?

पहला

हाँ, न मन्त्र ही है, वह सर्वथा स्वतन्त्र है ?

दूसरा

यह भी क्या सम्भव है ? कोई गूढ़ माया है ;
देखा उसे आपने है ?

पहला

देखा है ,

दूसरा

उठाया है ?

पहला

व्यर्थ था उठाना,

दूसरा

भला तो फिर क्यों आये थे ?

पहला

यों ही, कुछ कौतुक के भाव खींच लाये थे ।

दूसरा

यह भी क्या सम्भव है ? अच्छा मन्त्र—

पहला

रहिए ,

बतला दूँ आपको मैं,

दूसरा

हाँ हाँ, तब कहिए।

पहला

देव का है चाप, कोई देव ही चढ़ावेगा,

दूसरा

अच्छी कही, चाप को चढ़ाने देव आवेगा !
हो हो, अब जानकी को कोई देव ब्याहेगा !
देवियों को छोड़ देव मानवी को चाहेगा !
देव - दूत भी नहीं, हाँ देव स्वयं हो हो हो !
आपने पते की कही, पीछे फिर जो हो हो !

पहला

सुनिए महाशय, क्या संशय है आपको ?
जाना बस, आपने है दूत के प्रताप को !
किन्तु यहाँ—

दूसरा

अच्छा, जरा यह तो बताइए,
जानते ही होंगे आप, मुझको जताइए—

देता नहीं देवों को जनक निमन्त्रण क्यों ?
पूर्ण किया चाहता है मानवों से प्रण क्यों ?

पहला

मानवों के रूप में ही देव यहाँ आते हैं।

दूसरा

एक बात में ही आप झगड़ा मिटाते हैं !

पहला

अच्छा तब—

दूसरा

सुनिए तो,

पहला

शीघ्र मुझे जाना है ;

दूसरा

अच्छा, उस शंकर का कौन-सा ठिकाना है ?

पहला

(मुसकराकर)

आप वहाँ जायँगे क्या ?

दूसरा

आप क्या बतायँगे ?

पहला

किन्तु वहाँ जाके आप लौटके न आयँगे !

दूसरा

अच्छा, क्या उसका यहाँ कोई सिद्ध भक्त है ?

पहला

हैं न भृगुराम मुनि

दूसरा

क्या वह सशक्त है ?

पहला

पूरे शक्तिमान हैं वे

दूसरा

अच्छा, अब जाइए,

पहला

(स्वगत)

पिण्ड छूटा

(प्रकट)

अच्छा,

दूसरा

अरे, यह तो बताइए—

सम्प्रति कहाँ है वह ?

पहला

हैं महेन्द्र द्वीप में,

दूसरा

वह तो पड़ेगा मेरे पथ के समीप में।

पहला

मिलना क्यों चाहते हैं आप उनसे वहाँ ?

दूसरा

(स्वगत)

इसको बता दें !

(प्रकट)

देर होगी आपको यहाँ !

पहला

अच्छा, नमस्कार,

दूसरा

नमस्कार, अरे, रहिए,

पहला

अति कर दी है आपने तो, अस्तु, कहिए।

दूसरा

चाप को चढ़ाने देव कब तक आवेंगे ?

पहला

आप वहाँ जाके यहाँ जब तक आवेंगे।

(स्वगत)

यह भी क्या सोचता है अपने हृदय में ?

दूसरा

(स्वगत)

लो, फिर तो संशय नहीं है कुछ जय में।
या तो भृगुराम से मैं मन्त्र सीख आऊँगा,
अन्यथा विरोध की ही आग लगा जाऊँगा।

पहला

(स्वगत)

ध्यान में लगा है यह, तो यहाँ से मैं चलूँ।

(जाता है)

दूसरा

(देखकर)

क्या वह भाग गया ? अच्छा तो मैं भी टलूँ।

९

स्थान—जनकपुर, धनुःशाला

[जनक, विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण]

जनक

पाकर दुर्लभ दर्शन आज,
मैं कृतकृत्य हुआ मुनिराज !
ये हैं कोसलेश के बाल,
मानो मानस - मंजु - मराल।
देख रूप, गुण, शील, सुवेश,
होता है वात्सल्य विशेष।

विश्वामित्र

अपने ही सुकुमार कुमार,
समझो इनको सभी प्रकार।

तुम हो दशरथ-सखा महीप !
ये भी हैं उनके दृग-दीप !

जनक

इसका क्या कहना है ?

(स्वगत)

हाय !

आज कहीं–पर नहीं उपाय ।

(प्रकट)

देव, यही है वह शिव-चाप ,
जो मुझको देता है ताप !
बनकर इसने वज्र - समान
मेटा क्षत्रिय - कुल का मान !
इसे चढ़ा देना तो दूर–
ले भी सका न कोई शूर !
पुत्री का अदृष्ट - सा घोर–
दीख रहा यह मुझे कठोर !
हुआ विश्व क्या वीर्य-विहीन ,
क्या सब दया-पात्र हैं दीन ?

जन्म नहीं लेते क्या वीर,
होते हैं निस्सार शरीर?
क्षत्राणियाँ न–

लक्ष्मण

बस, बस, और–
होगा अब दुःसाहस और
अधिक नहीं सुन सकते कान,
आप पूज्य हैं पिता - समान।
फिर भी फिर भी यह अपमान
सह्य नहीं जैसे विष - बाण।
करते हुए विषाद - विलाप,
सीमोल्लङ्घन करें न आप।
अब भी खानें जनतीं हीर,
अब भी हैं रघुवंशी वीर।
अब भी सागर बना अथाह,
अब भी भागीरथी - प्रवाह।
अब भी रवि कर रहा प्रकाश,
उसके कुल का हुआ न नाश।

(राम से)

ये राजर्षि जनक हे तात !
कहते हैं यह कैसी बात ?
क्या है यह प्रचीन पिनाक ,
कहो, उठा लाऊँ मैनाक ।
जो है जलधि - गर्भ में मग्न ,
कहो, सुमेरु करूँ मैं भग्न ।
कहो, उखाड़ूँ दिग्गज - दन्त ,
अवनि उठाऊँ यथा अनन्त ।
कहो, छीन लूँ यम का दण्ड ,
खण्ड करूँ ब्रह्माण्ड अखण्ड ।
जो न करूँ तो धरूँ न चाप ,
आज्ञा देकर देखें आप ।
ये मेरे दोनों भुज दण्ड ,
शत शुण्डों से अधिक प्रचण्ड ।
ऐसा भी है कोई कार्य ,
कर सकते हों जिसे न आर्य ?

राम

अनुज, अहा ! हो जाओ शान्त ,
आकुल थे राजर्षि नितान्त ।
सके हृदय का वेग न रोक ,
अस्थिर कर देता है शोक ।

विश्वामित्र

राजन्, यह लक्ष्मण का क्रोध ,
अन्य भाव से करो न बोध ।
जो हैं सच्चे शूर समर्थ ,
समुचित है यह उनके अर्थ ।

जनक

देव, देखकर क्षात्रोत्कर्ष ,
हुआ आज मुझको अति हर्ष ।
अब भी है हममें कुल-गर्व ,
क्षत्रियत्व भी बना अखर्व ।
सुनें वचन तो ऐसे आज—
रक्खें जो वीरों की लाज ।
लक्ष्मण का समुचित आक्षेप
है मानो चन्दन का लेप ।

धन्य वत्स का वह घन-घोष,
अहा ! रोष भी है निर्दोष।
हुआ अरुण मुख, लोचन घूर्ण,
मानो रवि किरणों से पूर्ण।
पाकर ऐसे पुत्र अनन्य,
महाराज दशरथ हैं धन्य।
फिर भी—

विश्वामित्र

राम, चढ़ाओ चाप,
प्रकट करो निज भुज-प्रताप।

राम

जो आज्ञा, आज्ञा ही आप—
चढ़ा चुकी मानो यह चाप।
अब ये मेरे दोनों हाथ—
हैं निमित्त ही-से मुनिनाथ!

जनक

कितना विनय और उत्साह!
इस साहस की है कुछ थाह?
(राम धनुष उठाते हैं)

लक्ष्मण

आहा ! आहा ! कैसा दृश्य ,
रोहित - युत घन जैसा दृश्य !
(धनुष का टूटना)

राम

अरे, खींचने के ही संग–
यह कोदण्ड हुआ क्यों भंग ?

जनक

हुआ अहो ! क्या स्वप्न-विकास
अब भी मुझे नहीं विश्वास ।

विश्वामित्र

अहा ! सदा शंकित है स्नेह ,
राजन्, दूर करो सन्देह ।
रामचन्द्र ने यह कोदण्ड
देखो, तोड़ किया दो खण्ड !
गूँज रहा है अब भी नाद ,
सुनो और पाओ आह्लाद ।

जनक

तब तो है यह सुन्दर सत्य,
मुने! हुआ अब मैं कृतकृत्य।
कौन जानता था ये बाल,
होंगे ऐसे बली विशाल।

(नेपथ्य में)

जीजी, जीजी, चटका चाप,
दूर हुआ सबका सन्ताप।

लक्ष्मण

(विश्वामित्र से)

देव, अहा! कोयल-सी कूक,
उठो अचानक मानो हूक!
मेरे सम्मुख परम पवित्र
प्रकटित करती है यह चित्र
आर्या से कहकर वृत्तान्त,
लिपटी उनकी बहन नितान्त!

जनक

(हर्ष से)

स्वयं सिद्ध है यह अनुमान,
मैं हूँ हर्षोन्मत्त - समान।

लक्ष्मण की आर्या हो आज
सीता धन्य हुई मुनिराज !

विश्वामित्र

भूप, परस्पर है यह भाव–

जनक

तो मैं करता हूँ प्रस्ताव।
जयमाला अब डाली जाय,
शेष नियम-विधि पाली जाय।
मेरी कन्याएँ हैं चार,
ये सब भी हैं चार कुमार !
भेजे जायँ दूत साकेत,
आवें भूप बरात - समेत।

विश्वामित्र

इससे अच्छी है क्या बात ?
यही करो अब तुम हे तात !

जनक

जो आज्ञा, कृतार्थ है दास,
नहीं समाता हर्षोल्लास !

लक्ष्मण

(राम से)

आर्य, पायँगे अब हम लोग—
शीघ्र पिता-पद-दर्शन-योग ।
अनुज और मित्रों के संग,
यहीं मिलेंगे—

राम

मेरे अंग
पुलक उठे हैं वह सुख सोच,
हिलें - मिलेंगे निस्संकोच ।

(एक प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी

(जनक से)

देव, आ रहे हैं भृगुराम,
मानो रुद्र जलाकर काम !

(शीघ्रता से परशुराम का प्रवेश)

परशुराम

आ पहुँचा मैं स्वयं, विदेह !

जनक

धन्य हुआ मेरा यह गेह।
करिए निज पूजा स्वीकार,

परशुराम

पीछे, पहले करूँ विचार।

लक्ष्मण

(स्वगत)

है यह भृगुसुत वही नृशंस–
खाया जिसने क्षत्रिय वंश ?

परशुराम

यद्यपि है मुझको सब ज्ञात,
फिर भी सुनना है यह बात–
किसने तोड़ा है शिव-चाप ?

लक्ष्मण

किन्तु जानते हैं जब आप–
फिर क्यों पूछ रहे हठ ठान,
क्या कुछ कलुषित-सा है ज्ञान ?

परशुराम

अरे चपल बालक, रह, मौन ;
तुझे ज्ञात है, मैं हूँ कौन ?

लक्ष्मण

कहें आप ही, मैं हूँ मौन ;
ब्राह्मण या क्षत्रिय, हैं कौन ?

परशुराम

रखता हूँ मैं चाप स-शाप
दोनों

लक्ष्मण

अहो ! शान्त हो पाप !
रहे वर्णसंकरता दूर,

परशुराम

अरे मूढ़ ! मुझ-सा श्रुत शूर—
कौन बड़ा ब्राह्मण है अन्य ?

लक्ष्मण

आप महाब्राह्मण हैं, धन्य !

परशुराम

अरे अधम, उद्धत, अज्ञान,
तू मुझको वह ब्राह्मण जान–
जिसने बल से वारंवार,
किया क्षत्रियों का संहार।

लक्ष्मण

हत्यारे होकर यह वेष!
पर क्षत्रिय अब भी हैं शेष।

परशुराम

तो यह मेरा कठिन कुठार,
उद्यत है अब भी अनिवार।
फिर हो इसका कार्यारम्भ,
पहले हरे उसीका दम्भ–
जिसने तोड़ा है शिव - चाप

राम

टूट गया वह अपने आप!
मैंने उसे चढ़ाया मात्र?

परशुराम

फिर भी नहीं तू क्षमा-पात्र।

राम

क्षमा चाहने वाला काम—
कभी नहीं करता है राम ;
मेरे लिए दया है दण्ड ।

परशुराम

तो ले यह मेरा कोदण्ड ,
प्रथम चढ़ाकर इस पर बाण ।
दे मुझको निज बल-प्रमाण ,

(राम चुपचाप परशुराम की ओर हाथ बढ़ाकर धनुष-बाण ले लेते हैं और धनुष चढ़ाकर उसपर शर-संधान करते हैं । देखकर परशुराम का चौंकना)

राम

जान तुम्हें ब्राह्मण - सन्तान ,
क्या छोड़ूँ तुमपर शर तान ?
पर अमोघ है मेरा बाण ।
हो इसका किस ओर प्रयाण ?
कहो, तुम्हारा गति - संहार—
करूँ कि रोकूँ स्वर्ग - द्वार ?

परशुराम

तब क्या हरने को भू - भार,
लिया आप प्रभु ने अवतार !
क्या यह सब है लीला मात्र ?
मैं हूँ प्रभो ! क्षमा का पात्र।
स्वर्ग - भोग की मुझे न चाह,
रुके न मेरा गति - प्रवाह।
तीर्थाटन करके स्वच्छन्द,
पाऊँगा मैं परमानन्द।

(प्रणत होते हैं)

राम

ऐसा ही हो,

(बाण छोड़ते हैं)

जनक

मुझ-सा अन्य—
होगा कौन धरा पर धन्य ?

विश्वामित्र

उठता है सब ओर स-नाद
गीत-वाद्य मय मोदोन्माद।

(जयमाला लिये सखियों के साथ सीता आती हैं और धीरे-धीरे राम की ओर बढ़ती हैं। सखियाँ गाती हैं)

(गान)

नयन, नई यह झलक निहारो !
हे तन, मन, जीवन, धन, तुम सब
अब अपने को वारो।
साधन ने वह सिद्धि गही है,
मिली स्वर्ग से आज मही है।
प्रकृति - पुरुष की भेट यही है,
ध्यान, इसे तुम धारो,
नयन, नई यह झलक निहारो !